# भारत की न्यायिक व्यवस्था का पुनर्गठन

## (न्यायिक व्यवस्था के पुनर्गठन पर राष्ट्रीय सभा के लिए घोषणा पत्र)

'कारपोरेट' मीडिया प्रायः अतिष्योक्ति करता रहता है कि अब न्यायपालिका ही देष की एकमात्र अमलदार और जिम्मेदार संस्था रह गयी  है, और यही अपराधियों द्वारा नियंत्रित सरकार के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है। लेकिन देष का बहुत बड़ा तबका थोड़े से भी न्याय की उम्मीद न्यायपालिका से नहीं करता है। गरीब लोग तो न्यायालय तक पहुंच ही नहीं पाते। इसकी औपचारिकताओं और जटिल प्रक्रियाओं के कारण केवल वकीलों द्वारा ही न्यायालय में बात कही जा सकती है, लेकिन गरीब लोग वकीलों की बड़ी–बड़ी फीसें नहीं दे सकते, वे न्याय से वंचित रह जाते हैं। जो कुछ लोग न्यायालय तक पहुंच पाते हैं उन्हें यह उम्मीद नहीं होती कि एक निष्चित समयावधि में उनके विवाद का निपटारा हो पाएगा। मुकदमे के निर्णय में जितने समय की सजा दी जाती है उससे ज्यादा समय तो मुकदमों की सुनवाई में ही लग जाता है। अगर इस दौरान मुवक्किल जेल से बाहर हुआ तो इस सारे मुकद्मे के दौरान अपने को बचाने की कवायद की परेषानी और सजा से ज्यादा खर्चे और जुर्माना ही कष्टदायी हो जाता है। पुलिस और प्रभावषाली लोग न्यायिक प्रक्रिया को और भी ज्यादा दूरूह बना रहे हैं क्योंकि प्रभावषाली लोग पुलिस को अपने इषारों पर नचाते हैं और उन लोगों को डराने धमकाने और चुप कराने के लिए पुलिस का इस्तेमाल करते हैं जो अत्याचारी और षोषणपूर्ण व्यवस्था को बदलने का प्रयास कर रहे हैं।

न्यायालय द्वारा अगर किसी मुकदमे का निर्णय हो भी जाता है तो वह भी विकृतिपूर्ण ही होता है। वास्तव में पूरी न्यायिक प्रक्रिया ही भ्रष्टाचार की षिकार हो गयी है। जो लोग न्यायिक प्रक्रिया से जुड़े हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि न्यायपालिका में भी उतना ही भ्रष्टाचार है जितना कि राज्य की अन्य संस्थाओं में। न्यायपालिका में जवाबदेही के लिए कोई तंत्र न होने की वजह से , इसका भ्रष्टाचार दिखाई नहीं देता और मीडिया भी न्यायपालिका की अवमानना के डर से इसके खिलाफ कुछ भी कहने को तैयार नहीं है। वर्तमान न्यायिक व्यवस्था की कोई जवाबदेही न होने के कारण भ्रष्टाचार और भी ज्यादा बढ़ गया है। तथाकथित महाभियोग की व्यवस्था के अतिरिक्त भ्रष्ट न्यायाधीषों को अनुषासित करने का अन्य कोई साधन नहीं है। इसके अलावा उच्चतम न्यायालय ने अपने ही एक निर्णय के द्वारा न्यायाधीषों के अपराध को जांच के दायरे से बाहर कर दिया है। यहां तक कि खुले रूप से रिष्वत लेने वाले किसी न्यायाधीष के खिलाफ एफआईआर तक दर्ज कराने के लिए मुख्य न्यायाधीष की स्वीकृति लेना आवष्यक बना दिया गया है, जो कभी मिलती

ही नहीं है। हद तो यह हो गयी है कि न्यायपालिका ने अपनी जवाबदेही से बचाव अपने ही द्वारा बनाए निर्णयों से कर रखा है।

इन सबसे भी बड़े रक्षा कवच के रूप में न्यायपालिका के पास 'न्यायालय की अवमानना' की षक्ति है जिसके द्वारा यह 'न्यायापालिका के मूल्यांकन के लिए की गई जनालोचना' को भी चुप करा सकती है, और कर भी रही है। न्यायालय की अवमानना के भय ने ही मीडिया को भी न्यायपालिका के बारे में कुछ भी कहने से रोक रखा है। कुछ हद तक यह भी एक वजह है कि न्यायपालिका के बारे में कोई गम्भीर जनचर्चा नहीं हो पाती। अब ऐसा लग रहा है कि न्यायपालिका सूचना के अधिकार का पुनरीक्षण करने से भी पीछे हट रही है। पहले तो न्यायपालिका ने नागरिकों को यह अधिकार दिए कि उन्हें प्रत्येक सार्वजनिक संस्था के कार्यों के बारे में जानने का अधिकार है, लेकिन अब न्यायपालिका स्वयं ही न्यायालय के रजिस्ट्रार के ऊपर स्वतंत्र अपीलीय अधिकारी व केन्द्रीय सूचना आयोग के अधिकारों को खत्म करके सरकार से सूचना अधिकार अधिनियम के पुनरीक्षण से हटने को कह रही है। साथ ही यह तय करने का अधिकार भी मुख्य न्यायाधीष को दिया गया कि न्यायालय के बारे में कोई सूचना दी जाएगी या नहीं दी जाएगी। अधिकांष न्यायालयों ने तो सूचना अधिकार अधिनियम के अनुसार अभी तक किसी लोक सूचना अधिकारी की नियुक्ति भी नहीं की है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने तो यह नियम बनाया है कि न्यायालय से सम्बन्धित खरीदारी व नियुक्तियां आदि जैसी गैर–न्यायिक सूचनाएं नहीं दी जाएंगी। इस सबसे यह विष्वास हो चला है कि न्यायपालिका अपने आप में कानून बनती जा रही है जो बिल्कुल अपारदर्षी और अनुत्तरदायी हो गई है।

न्यायपालिका की कोई जवाबदेही ने होने के कारण ही यह न्यायिक प्रक्रिया का उल्लंघन कर नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में भी हस्तक्षेप कर रही है। अपनी ही व्याख्या द्वारा धारा 21, विषेषतः पर्यावरण से सम्बंधित अधिकारों का विस्तार करके, न्यायपालिका यमुना पुस्ता से बस्तियों को, दिल्ली की गलियों से फेरीवालों व रिक्षाचालकों को हटाए जाने के आदेष दे रही है, इसके साथ ही सरकारों को सर्वाधिक विवादास्पद 'नदी जोड़ो परियोजना' षुरू करने का भी आदेष दे चुकी है। कभी–कभी तो षक्तियां कार्यपालिका की इच्छा के विरूद्ध इस्तेमाल की जाती हैं लेकिन उनके आनाकानी करने पर उन्हें ऐसा करने का आदेष दे दिया जाता है।

फिलहाल दिल्ली के रिहायशी इलाकों में व्यापारिक प्रतिष्ठानों को सील करने के आदेश न्यायपालिका की कठोरता का ही उदाहरण है। हालांकि न्यायपालिका मास्टर प्लान के उल्लंघन को रोक सकती थी और

सरकार को मास्टर प्लान के बदलाव पर विचार करने के लिए आदेष दे सकती थी, जब सरकार व्यापारियों का सीलिंग करा रही थी। कुछ व्यापारियों न तो निष्चित समयावधि में व्यापार बन्द करने का एफीडेविट भी दे दिया था, इसलिए उन्हें कुछ इलाकों में व्यापार की स्वीकृति के लिए मास्टर प्लान मे संषोधन किए गये, उसके बाद भी प्रोपर्टी की सीलिंग के आदेष न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से पूरी तरह बाहर थे।

न्यायपालिका की जवाबदेही न रह जाने का यह परिणाम हुआ है कि न्यायपालिका आज गरीबों के अधिकारों को कुचल रही है। संविधान सभी को आवास और जीविका का अधिकार देता है लेकिन न्यायपालिका ने न केवल दिल्ली और मुम्बई के हजारों झुग्गीवासियों के घरों को तोड़ने के आदेष दे दिए हैं बल्कि हजारों फेरीवालों और रिक्षाचालकों को भी दिल्ली और मुम्बई की सड़कों से हटाने के आदेष दे दिए हैं। इतना ही नहीं उनकी जीविका के लिए कोई और प्रबंध भी नहीं किया गया है। वर्गीय दम्भ और नई आर्थिक नीतियां न्यायाधीषों की मानसिकता पर इस कदर हावी हो रही हैं कि बाजार व्यवस्था के दबावों के कारण मानवाधिकारों को भी नजरअन्दाज किया जा रहा है। गैर जिम्मेदार न्यायपालिका संवैधानिक मूल्यों की उपेक्षा कर रही है। न्यायपालिका गरीबों के अधिकारों की रक्षा करने के बजाय पुलिसिया दबाव के हथकण्डे अपना रही है। लोग जिस तरह पुलिस को डर और घृणा से देखते हैं, उतनी ही घृणा और डर से अब न्यायपालिका को देखने लगे हैं।

न्यायिक व्यवस्था की कमियों पर विधि आयोगों ने कई बार विचार किया है। फिर भी इस चर्चा में कई अहम विचारणीय मुद्दों को छोड़ दिया गया है जैसे गरीबों की न्यायपालिका तक पहुंच, वर्गीय दम्भ, न्यायाधीषों का क्षेत्राधिकार और न्यायिक जवाबदेही जैसे मुद्दे। विधि आयोगों ने भी पूराने सेवानिवृत न्यायाधीषों द्वारा स्थापित व्यवस्था की ही पुष्टि कर दी। न्यायपालिका के पुनर्गठन के लिए आवष्यक ठोस सुझाव देने की बजाय समस्या के समाधान के नाम पर लीपा पोती कर दी गई है। हालांकि विलम्ब की समस्या के समाधान के लिए न्यायाधीषों की संख्या में 5 गुना वृद्धि करने की अनुषंसा जरूर की गई है लेकिन न्यायिक प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए कोई ठोस विचार प्रस्तुत नहीं किए गए हैं। न्यायपालिका को पारदर्षी और गरीबों के प्रति संवेदनषील बनाने के लिए जजों की नियुक्ति प्रक्रिया में भी सुधार के लिए कोई सुझाव नहीं दिए गए। न्यायपालिका को जवाबदेह बनाने के लिए दिए गए सुझाव, एक कमजोर व्यवस्था की तरफ संकेत करते है जहां पीठासीन जज अपने ही सहकर्मियों के खिलाफ मुकद्मा करते दिखाई दे रहे हैं और जब वह सहकर्मी अपराधी दिखाई पड़ता है तो जज के महाभियोग पर पुनः विचार के लिए मामले को संसद में दोबारा भेज दिया जाता है। इस तरह विधि आयोग ने भी एक गैर जिम्मेदार न्यायपालिका की व्यवस्था कर दी हैं। कैबिनेट न्यायिक परिषद विधेयक के उस 'इन–हाऊस प्रोसीजर' को कानूनी दर्जा दिलाना चाहती है,

जिसे जजों के खिलाफ षिकायतों की जांच के लिए करीब 10 वर्ष पहले मुख्य न्यायाधीषों के सम्मेलन में स्वीकार किया गया था। लेकिन कभी व्यवहार में इस्तेमाल नहीं किया गया। विधि आयोग द्वारा प्रस्तुत कुछ ठोस सिफारिषों पर जैसे अब गौर नहीं किया जा रहा है, उसी तरह 20 वर्ष पहले की गई जजों की संख्या में 5 गुना वृद्धि की विधि आयोग की सिफारिष भी नजरअंदाज कर दी गई है। कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि ये दोनों ही न्यायिक व्यवस्था में सुधार के प्रति गम्भीर हैं। ऐसा लगता है कि दोनों ही वर्तमान गैर–जिम्मेदार और नाकारा व्यवस्था से खुष हैं। न्यायपालिका और कार्यपालिका वास्तव में मुखौटा चढ़ाकर एक साथ जुट गई हैं और मिलकर गरीबों की जमीन और अन्य प्राकृतिक संसाधन छीनकर बड़े व्यापारियों को दे रही हैं।

न्यायिक सुधारों और विशेषकर न्यायिक जवाबदेही के लिए जब तक कोई जनान्दोलन नहीं होगा तब तक वे अपने काम के तरीके में बदलाव नहीं करेंगे। न्यायालय की अवमानना का डर जनता और मीडिया को न्यायपालिका की आलोचाना तक करने से रोक रहा है। तो ऐसे में जनान्दोलन को भी स्वरूप लेने में भी कठिनाई हो रही है।

न्यायपालिका ज्यादा से ज्यादा षक्तिषाली उच्छृंखल और गरीब–विमुख बनती जा रही है। वर्तमान व्यवस्था के हाथ में न्यायिक प्रषासन सौंपना, देष की आम जनता का गला घोंटने जैसा है। जनता को अब स्वयं ही न्यायिक व्यवस्था के सुधार का बीड़ा उठाना होगा। देष का हर नागरिक न्यायिक व्यवस्था के उचित कार्यान्वयन में भागीदार है। अपने इस अधिकार के प्रति उदासीन होने का अर्थ है, न्यायपालिका को गरीबों पर हावी होने देना। यह स्थिति अराजकता उत्पन्न कर देगी। न्यायिक प्रषासन के कार्यान्वयन की उचित व्यवस्था न होने से 'विधि का षासन' कायम नहीं रह सकता। आम आदमी की जरूरतों के अनुसार न्यायपालिका का पुनर्गठन करके जनता को ही इसमें सुधार लाना होगा।

इस दिशा में पहल करने के लिए ही 'न्यायिक सुधारों पर राष्ट्रीय सभा' का आयोजन किया जा रहा है। सभी जनान्दोलन, उपभोक्ता संगठन सार्वजनिक हित के मुद्दों पर काम करने वाली संस्थाएं और व्यक्ति इस दो दिवसीय सभा में आमंत्रित हैं। न्यायिक व्यवस्था के कार्यान्वयन से जुड़े सभी मुद्दों पर सभा में विचार किया जायेगा। हम उम्मीद करते हैं कि आपकी बढ़–चढ़कर भागीदारी होगी और इस सभा से न्यायिक व्यवस्था में सुधार के लिए राष्ट्रीय संगठन और आन्दोलन की शुरूआत होगी।